ISSN: 2395-7852

International Journal of Advanced Research in Arts, Science, Engineering & Management

Volume 10, Issue 4, July 2023

INTERNATIONAL STANDARD SERIAL NUMBER INDIA

Impact Factor: 6.551

+91 9940572462 +91 9940572462 ijarasem@gmail.com www.ijarasem.com

International Journal of Advanced Research in Arts, Science, Engineering & Management (IJARASEM)

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 6.551 | Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 10, Issue 4, July 2023 |

दिनकर के काव्य में राष्ट्रीय चेतना के स्वर

Dr. Deepali Sharma

Assistant Professor in Hindi, Sanatan Dharma Government College, Beawar,

Rajasthan, India

सार

हिंदी साहित्य में दिनकर की पहचान राष्ट्रकवि के रूप में है। उनका साहित्य राष्ट्रीय जागरण व संघर्ष के आह्वान का जीता-जागता दस्तावेज़ है। दिनकर जी के यहाँ राष्ट्रीय चेतना कई स्तरों पर व्यक्त हुई है।हुंकार, रेणुका, इतिहास के आँसू जैसी कविताओं में दिनकर जी ने विद्रोह और विप्लव के स्वर को उभारा है। इनमें कर्म, उत्साह, पौरुष एवं उत्तेजना का संचार है। यह सब तत्कालीन राष्ट्रीय आंदोलन की प्रगति के लिये अत्यंत सहायक सिद्ध हुआ।

दिनकर जी के यहाँ राष्ट्रीय चेतना एक अन्य स्तर पर वहाँ दिखाई देती है, जहाँ वे शोषण का प्रतिकार करने का समर्थन करते हैं। वे कहते हैं कि यदि कोई हमारे साथ अन्यायपूर्ण व्यवहार करे तो नैतिकता का तकाजा युद्ध करना ही है न कि अनैतिकता को स्वीकार करना-

"छीनता हो स्वत्व कोई और तू
त्याग तप से काम ले, यह पाप है"

संघर्ष के आह्वान के साथ दिनकर जी ने प्राचीन भारतीय आदर्शों एवं मूल्यों की स्थापना के माध्यम से भी राष्ट्रीय जागरण व राष्ट्रीय गौरव की भावनाओं को जगाने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है।

दिनकर जी की राष्ट्रीय चेतना संकीर्ण नहीं है। यह न केवल ब्रिटिश राज्य का विरोध करने वाली है अपितु स्वतंत्रता के बाद भी जनता के सामाजिक-आर्थिक शोषण के विरुद्ध आवाज़ उठाने वाली है। कवि ने 'दिल्ली', 'नीम के पत्ते', 'परशुराम की प्रतिज्ञा' में स्वतंत्रता-उपरांत जनजीवन में व्याप्त आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक विषमताओं का चित्रण किया है-

"सकल देश में हालाहल है, दिल्ली में हाला है।
दिल्ली में रोशनी, शेष भारत में अंधियारा है।"

इस प्रकार यह कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि दिनकर जी के यहाँ राष्ट्रीय चेतना उसी स्तर पर व्यक्त हुई है जो उन्हें भारतेन्दु, गुप्त जी की परंपरा में स्थान दिलवाती है।

परिचय

आधुनिक युग में हिन्दी काव्य में पौरुष का प्रतीक और राष्ट्र की आत्मा का गौरव गायक जिस कवि को माना गया है, उसी का नाम रामधारी सिंह 'दिनकर' है। वाणी में ओज, लेखनी में तेज और भाषा में अबाध प्रवाह उनके साहित्य में देखा जा सकता है। 'दिनकर' का जन्म बिहार के सिमिरिया घाट स्थान पर 30 **सितम्बर**, 1908

को हुआ। मुंगेर जिले में यह छोटा-सा ग्राम है। इनके पिता का नाम श्री रविसिंह था। कविवर दिनकर ने काव्य-क्षेत्र में 'कुरुक्षेत्र' और 'उर्वशी' जैसी महान् कृतियाँ देने के अतिरिक्त 'रेणुका', 'रसवन्ती', 'सामधेनी', 'बापू', 'रश्मि-रथी', 'द्वन्द्वगीत', 'नील कुसुम', 'परशुराम की प्रतीक्षा', 'आत्मा की आँखें' आदि अनेक कृतियाँ प्रदान की हैं। सन् 1959 में 'पद्मभूषण' की उपाधि से विभूषित हुए। इन्हें 'संस्कृति के चार अध्याय' ग्रन्थ पर साहित्य अकादमी से पाँच हजार का पुरस्कार प्राप्त हुआ। सन् 1972 में 'उर्वशी' कृति पर इन्हें ज्ञानपीठ पुरस्कार दिया गया।संस्कृत के अनुसार 'राष्ट्र' में 'ध' प्रत्यय के योग से 'राष्ट्रीय' शब्द बनता है। 'राष्ट्र' शब्द से 'राष्ट्रीय' और 'राष्ट्रीय' से 'राष्ट्रीयता' शब्द की संरचना हुई है। राष्ट्र विशेष के गुणों या राष्ट्र के प्रति विशिष्ट प्रेम को राष्ट्रीयता की संज्ञा दी जा सकती है। इस प्रकार राष्ट्रीयता राष्ट्र विशेष की आत्म-चेतना है। राष्ट्रीयता के अन्तर्गत राष्ट्र या देश के प्रति व्यक्ति का संवेदनशील घनिष्ठ संबंध होता है। राष्ट्रीयता मनुष्य की सहज और स्वाभाविक वृत्तियों में से एक है, जिसके आधार पर वह अपने देश के प्रति आत्मीय लगाव का अनुभव करता है। वह अपने देश को समुन्नत, विकसित और गतिशील बनाने के लिए सदैव उत्सुक रहता है। इसी भावावेश में वह राष्ट्र की रक्षा, कल्याण और विकास के लिए सर्वस्व न्योछावर करते हुए अपना गौरव समझता है। यह निर्विवाद सत्य है कि जब व्यक्ति 'स्व' की परिधि से बाहर आकर सामाजिक संदर्भ में धार्मिक जातीय और धार्मिक संस्पर्श करता हुआ राष्ट्रीयता के विशाल परिवेश में पहुँचता है, तो उसमें दिव्य और आदर्श भाव विकसित हो जाते हैं। राष्ट्र-प्रेम मानव में राष्ट्र के समाज, प्रकृति, उसकी संस्कृति, उन्नति और विकास के प्रति भावात्मक लगाव उत्पन्न करता है। राष्ट्र-प्रेम मानव-मन में उत्साह, त्याग और उत्सर्ग का अपूर्व भाव भरता है। [1,2] सच्चा राष्ट्र-प्रेम आत्मा के दिव्य भाव का साक्षात्कार करता है, जिससे देश के समस्त मानव, पशु-पक्षी और प्रकृति से आत्मीय लगाव का अनुभव करते हैं। राष्ट्र-प्रेम की मनमोहक छाया में पहुँचकर मानव के मन का भावात्मक विकास भूत, वर्तमान से लेकर भविष्यत तक हो जाता है। राष्ट्र-प्रेम में स्वदेश के प्रति आदर और सम्मान का भाव होता है। इसी तथ्य को स्पष्ट करते हुए बाबू गुलाबराय ने कहा है- किसी विशिष्ट भौगोलिक इकाई के जनसमुदाय के पारस्परिक सहयोग और उन्नति की अभिलाषा से प्रेरित, उस भू-भाग के लिए प्रेम और गर्व की भावना को 'राष्ट्रीयता' कहते हैं। वस्तुत: राष्ट्रीयता एक अनूठी भाव-धारा है, जिसमें राष्ट्र के सूक्ष्म और स्थूल दो तथ्यों के प्रति उत्तरोत्तर लगाव दिखाई देता है। राष्ट्रीयता के स्थूल तथ्यों में भौगोलिक और प्राकृतिक संदर्भ आते हैं, तो सूक्ष्म तथ्यों में सांस्कृतिक, धार्मिक, दार्शनिक, आध्यात्मिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, राजनीतिक, साहित्यिक, कलात्मक, भाषायी चेतना आती है।

राष्ट्रीयता के संदर्भ में राष्ट्र की भौगोलिक सीमा के प्रति निष्ठा होना प्राथमिक आधार है। भौगोलिक सीमा राष्ट्र की भूमि और उसकी पहचान निर्धारित करती है। भूमि विषयक देश-प्रेम मनुष्य में राष्ट्रीयता की पावन चेतना का आधार सिद्ध होता है। भू-भाग के आधार पर ही समस्त जन-समूह के प्रति सहज स्नेहिल भाव उभरता है। यदि भूमि की विभिन्न वस्तुओं के प्रति लगाव बढ़ता है तो प्रकृति से उदात्त तत्त्वों का विकास होता है। संस्कृति की भाव-तरंगिणी राष्ट्र की अनुप्रेरक आत्मशक्ति है। वस्तुत: संस्कृति राष्ट्र को महिमा मंडित करने वाली आत्मशक्ति है। मनुष्य का संस्कारित आदर्श विचार उसे मानवतावादी धरातल पर

पहुँचा देता है और फिर अनुकरणीय राष्ट्रीयता का विकास होता है। संस्कृति के अन्तर्गत आदर्श, परम्पराएँ, रीति-रिवाज, साहित्य, संगीत और कला की बलवती भूमिका होती है। राष्ट्रीयता के लिए सांस्कृतिक एकता-अनिवार्य तत्त्व है और इसके विद्यमान रहने पर ही राष्ट्र में एकता की भावना जागृत होती है। राष्ट्रीय चेतना में धार्मिकता की बलवती भूमिका होती है। राष्ट्रीयता में व्यक्ति राष्ट्र की गौरव-गरिमा की रक्षा के लिए समर्पित होने के लिए तत्पर रहता है। राष्ट्रीय चेतना को जागृत करने में ऐतिहासिक संदर्भों की महती भूमिका होती है। देश के निर्माण में ऋषि, मुनियों, महात्माओं, मनीषियों के चिंतन और गतिशीलता का विशेष योगदान होता है। अतीत की गौरव-गाथा से जन-मन को सन्मार्ग पर गतिशील रहने की प्रेरणा मिलती है। निश्चय ही, राष्ट्रीय चेतना में राष्ट्र की स्वतंत्रता, अखंडता और एकता की पावन-त्रिवेणी का प्रवाह होता है।

'चेतना' शब्द अंग्रेजी शब्द कानशियसनेस का हिन्दी पर्यायवाची है। डॉ. रामप्रसाद त्रिपाठी ने चेतना को विवेकपूर्ण वैचारिकी माना है।

विचार-विमर्श

दिनकर जी का अधिकांश साहित्य राष्ट्रीय चेतना से ओतप्रोत है। चीन से युद्ध के दिनों में 'दिनकर' की 'परशुराम की प्रतीक्षा' कविता अत्यन्त प्रसिद्ध हुई। इस कविता में देश के सैनिकों को अहिंसा त्यागकर पौरुष बनने का आह्वान किया गया है। सन् 1962 के चीनी-भारतीय-युद्ध के समय कविवर 'दिनकर' ने 'परशुराम की प्रतीक्षा' कविता में देश के पौरुष को जागृत करते हुए सिंह गर्जना की थी-

वैराग्य छोड़ बाहों की विभा संभालो,
चट्टानों की छाती से दूध निकालो।
है रुकी जहाँ भी धार, शिलाएँ तोड़ो,
पीयूष चन्द्रमाओं को पकड़ निचोड़ो।
चढ़ तुंग शैल शिखरों पर सोम पियो रे,
योगियों नहीं, विजयी के सदृश जियो रे।
(परशुराम की प्रतीक्षा)

'दिनकर' अपनी काव्य-चेतना के बारे में लिखते हैं-

क्रांति-धात्रि कविते! उठ अंबर में आग लगा दे।
पतन, पाप, पाखंड जले, जग में ऐसी ज्वाला सुलगा दे।

'दिनकर' प्रेम, राष्ट्रीयता, मानवता और क्रांति के गायक हैं। उनकी कविता में राष्ट्र-व्यापी जागरण का स्वर है। एक ओर वे अपने अतीत से प्रभावित हैं तो दूसरी ओर वर्तमान की अधोगति से क्षुब्ध। प्राचीन गौरव के प्रति उनके मन में अगाध श्रद्धा है। दिनकर की कविता में दीन, दु:खी और दलितों के प्रति सहानुभूति एवं संवेदना भी है। उन्होंने श्रमिकों और कृषकों के दयनीय जीवन का मार्मिक अंकन किया है। निम्न पंक्तियों में उनकी सहानुभूति एवं संवेदना द्रष्टव्य है-

आहें उठो दीन कृषकों की।
मजदूरों की तड़प पुकारें।

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 6.551 | Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 10, Issue 4, July 2023 |

अरी गरीबी के लोहू पर,
खड़ी हुई तेरी दीवारें.....।

कवि ने हिमालय का मानवीकरण किया है। वास्तव में, कवि हिमालय के माध्यम से भारतीयों को संबोधित करते हुए कहते हैं-

ओ, मौन तपस्वी-लीन यती।
पत भर को तो कर दृगोन्मेष।
रे ज्वालाओं से दग्ध, विकल
है तड़प रहा पद पर स्वदेश
सुख-सिन्धु, पंचनद, ब्रह्मपुत्र,
गंगा, यमुना की अमिट-धार,
जिस पुण्यभूमि की ओर बही,
तेरी विगलित करुणा उदार।
(हिमालय)

कविवर दिनकर कहते हैं- हे हिमालय, देश के कितने वीर पुरुष रूपी रत्न हमसे छिन गए, जो स्वतंत्रता की चिनगारी जलाए रहे। भारत का अनंत वैभव चला गया। हिमालय समाधिस्थ होकर साधना ही करता रहा और प्यारा देश भारत इन वीर रत्नों से रहित हो गया। महाभारत काल में दुःशासन ने केवल एक द्रौपदी के बाल खींच लिये थे, जिसके कारण महाभारत के भयंकर युद्ध की योजना बनाई गई और आज न जाने कितनी स्त्रियों के सतीत्व को लूटा जा रहा है और कितनी कन्याओं का अपहरण हो रहा है, किन्तु फिर भी किसी के मन में पीड़ा नहीं कि इन अत्याचारों का प्रतिरोध किया जाए। चित्तौड़ से पूछो कि जरा-सा अत्याचार होने पर या किसी नारी की ओर किसी की कुदृष्टि होने पर बड़े-बड़े संग्राम रचे गए और नारियाँ जौहर व्रत करके जीते-जी अपने प्राणों की बलि दे दिया करती थीं। कवि ने इसी पीड़ा को निम्न शब्दों में प्रकट किया है-

कितनी मणियाँ लुट गई? मिटा
कितना मेरा वैभव अशेष।
तू ध्यान-मग्न ही रहा, इधर
वीरान हुआ प्यारा स्वदेश।
कितनी द्रौपदियौं के बल खुले?
किन-किन कलियों का अंत हुआ?
कह हृदय खोल चित्तौड़! यहाँ
कितने दिन ज्वाल-बसंत हुआ?
(हिमालय)

हिमालय का गौरव-गान करके देशोद्धार की प्रेरणा देते हुए कवि भारत के अतीत वैभव और वीर भाव को जगाना चाहता है। कवि हिमालय को संबोधित करके कहता है कि हे हिमालय! आज इस समय हमें अर्जुन और भीम तथा उनके क्रमशः गांडीव धनुष और गदा की आवश्यकता है। [3,4] उन्हें लौटा दे। आज युद्ध में पूर्ण पराक्रम दिखाकर शत्रु पर विजय प्राप्त करने वाले योद्धाओं की आवश्यकता है। कवि शंकर के आवास-स्थल हिमालय से प्रार्थना करता है कि तू शिवजी से प्रार्थना कर कि वे पुनः एक बार तांडव नृत्य करें

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 6.551 | Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 10, Issue 4, July 2023 |

जिससे सारे भारत में 'हर-हर', 'बम-बम' की ध्वनि गूँज उठे जिसकी अंगड़ाई लेकर सारी भूमि काँप उठे अर्थात् सर्वत्र भयंकर हलचल मच जाए। यथा-

रे रोक युधिष्ठिर को न यहाँ,
जाने दे उनकी स्वर्ग धीर,
पर, फिरा हमें गांडीव-गदा,
लौटा दे अर्जुन-भीम वीर।
कह दे शंकर से, आज करें,
के प्रलय-नृत्य फिर एक बार।
सारे भारत में गूँज उठे,
हर-हर, बम-बम का फिर महोच्चार।
(हिमालय)

कवि देश के लोगों को जागृत करते हुए कहता है कि लक्ष्य पास आ जाने पर थक कर बैठ जाना उचित नहीं है-

दिशा दीप्त हो उठी प्राप्त कर पुण्य-प्रकाश तुम्हारा।
लिखा जा चुका अनल-अक्षरों में इतिहास तुम्हारा।
जिस मिट्टी ने लहू पिया, वह फूल खिलायेगी ही,
अम्बर पर धन बन छाएगा ही उच्छवास तुम्हारा।
और अधिक ले जाँच, देवता इतना क्रूरर नहीं है,
थककर बैठ गये क्यों भाई! मंजिल दूर नहीं है।
(आशा का दीपक)

उक्त कविता का आशय यह है कि- जिस भारत भूमि की स्वतंत्रता के लिए इतने बलिदान हुए, उसमें स्वतंत्रता का फूल खिलकर ही रहेगा। यह आशा अवश्य फलवती होगी। हमारी पीड़ा जन्य साँसें आकाश में बादल बनकर अवश्य छायेगी जिससे स्वतंत्रता के रूप में सुखों की वर्षा होगी। हे भाई, अब लक्ष्य निकट ही है, अत: थक कर मत बैठो। तुम साधना-श्रम करो जिससे तुम शीघ्र लक्ष्य की प्राप्ति कर सको।

'आग की भीख' कविता में देश की दयनीय स्थिति का चित्रण करते हुए भगवान से स्वदेश के हित वरदान की भीख माँगता है कि उसके देश की सारी बुराइयाँ दूर हो जायें-

मन की बंधी उमंगें असहाय जल रही हैं,
अरमान-आरजू की लाशें निकल रही हैं।
भीगी-खुली पलों में रातें पुकारते हैं।
सोती वसुंधरा जब, तुझको पुकारते हैं।
इनके लिए कहीं से निर्भीक तेज ला दे,
पिघले हुए अनल कर इनको अमृत पिला दे।
उन्माद, बेकली का उत्थान माँगता हूँ,
विस्फोट माँगता हूँ, तूफान माँगता हूँ।

अर्थात् हे प्रभु! देश के युवकों के हृदयों में हिलोरे ले रही उमंगें साधनों के अभाव में व्यर्थ जल रही हैं। उनके मन की इच्छाओं और तमन्नाओं का जनाजा निकल रहा है। आँखों से निकले आँसुओं के कारण भीगी और खुली आँखों के साथ पल-पल गिनकर रातें

काट देते हैं। जब सारी धरती सुखपूर्वक सो रही होती हैं तो ये निराश युवक सहायता के लिए तुझे पुकारते हैं। हे प्रभु! तू इन युवकों के हृदय में निर्भीक तेज का संचार कर दे। कविवर दिनकर ने ओजस्वी शब्दों में राष्ट्रीय चेतना के संदर्भ में अतीत का गौरव - गान किया है। 'रेणुका' में संकलित 'हिमालय' कविता में वे कहते हैं -

तू पूछ अवध से, राम कहाँ? वृंदा घनश्याम कहाँ?
ओ मगध! कहाँ मेरे अशोक? वह चन्द्रगुप्त बलधाम कहाँ?
री कपिलवस्तु! कह बुद्ध देव के ये मंगल उपदेश कहाँ?
तिब्बत, इरान, जापान, चीन तक गये हुए संदेश कहाँ?

वस्तुत: कविवर 'दिनकर' संवेदनशील कवि हैं। उनका अधिकांश साहित्य राष्ट्रीय चेतना से ओतप्रोत है। उन्होंने सामाजिक उत्थान - पतन और आंदोलन से प्रभावित होकर काव्य - सृजन किया है। देश पर जब - जब संकट के बादल घिरते हैं, मानव - जीवन संघर्ष में जूझने लगता है, तब तब 'दिनकर' की कविता जन - मानस में ऊर्जा का संचार करती है। उनकी कविता देश की संस्कृति, सभ्यता, भाषा, परम्परा और आदर्श आदि की अनूठी एकता की आधारभूमि प्रस्तुत करती है।

परिणाम

राष्ट्रकवि दिनकर की चेतना महान है, वे संवेदनाओं एवं संचेतनाओं के साहित्यकार हैं। भारतीय संस्कृति और अस्मिता की जमीन से जुड़े साहित्यकार हैं, दिनकर जी। उनके काव्य ने समय-समय पर भारतीय युग चेतना को राष्ट्र की अस्मिता क प्रति उद्वेलित किया है। मन मानस को राष्ट्रीयता से आपूरित किया है। एतदर्थ राष्ट्रकवि दिनकर का काव्य प्रासंकितापूर्ण है और यह प्रासंगिकता युग-युग का प्रतिनिधित्व करती है। इसलिए राष्ट्रकवि दिनकर हिन्दी साहित्य-संसार में अमर है उनका काव्य भारतीय संस्कृति-भारतीयता से परिचित कराता है उनकी दृष्टि में भारत एक भू-खण्ड मात्र नहीं है। एक विचारधारा है जो भारतीयता से अंगीकृत है। उन्हीं के शब्दों में -

''**भारत नहीं स्थान का वाचक, गुण विशेष नर का है,**
एक देश का नहीं, शील यह भू-मण्डल भर का है।
जहाँ कहीं एकता अखण्डित, जहाँ प्रेम का स्वर है,
देश-देश मे वहाँ खड़ा, भारत जीवित भास्वर है।"

कवि अपने युग का प्रतिनिधित्व करता है। किसी भी कवि के व्यक्तित्व एवं कृतित्व में युग प्रतिबिम्बित होता है। स्वयं कवि ने स्वीकार किया है -

'कवि मानवता का वह चेतन यंत्र है जिस पर प्रत्येक भावना अपनी तरंग उत्पन्न करती है। जैसे भूकम्प मापक यंत्र से पृथ्वी के अंग में कहीं भी उठने वाली सिहरन आप से आप अंकित हो जाती है। धर्मपाल सिंह कहते हैं कि – "कवि ने जब काव्य जगत में प्रवेश किया उस समय भारतीय राजनीति हलचल के दौर से गुजर रही थी। भारत अंग्रेजों का गुलाम था। इन परिस्थितियों ने ही कवि के रूप में दिनकर जी को विशेष ख्याति प्रदान की। कवि ने अपने युग को बड़ी ईमानदारी से सशक्त स्वर में वाणी दी है।" डॉ. गोपाल राय सत्यकाम दिनकर के एक और पक्ष की ओर ध्यान दिलाते हैं – "देश के स्वाधीन होने के समय दिनकर हिन्दी के एक प्रमुख और प्रतिष्ठित कवि थे, और वे ऐसे कवि थे जिनकी कविता राष्ट्रीयता आन्दोलन की समसामयिक गतिविधियों से अभिन्न रूप से संबद्ध रही थी। दिनकर स्वाधीनता संग्राम में नहीं कूदे थे, केवल कलम से ही उसमें सहयोग दे रहे थे।"दिनकर का पहला

प्रकाशित काव्य-संग्रह 'बारदोली विजय' है पर इसकी कोई भी प्रति कहीं उपलब्ध नहीं है। इसमें 10 कविताएँ संकलित हैं जिसमें दिनकर की राष्ट्रीयता भावना बीज रूप में विद्यमान है। इसके भी पहले दिनकर ने 'वीर बाला' और 'मेघनाद वध' नामक काव्य लिखने आरंभ किए थे जो अधूरे रह गए और जिनकी पांडुलिपियों का कहीं पता नहीं है। प्रणभंग की रचना दिनकर ने मैट्रिक पास करने के बाद 1928 मे की। प्रणभंग जयद्रथ वध की तरह ही एक खंडकाव्य है जिसकी कथा महाभारत से ली गई है। प्रणभंग में राष्ट्रीय भावना की अभिव्यक्ति का मार्ग अपनाया गया है। इसमें कहानी तो महाभारत से ली गई है, पर उसके माध्यम से यह कहा गया है कि गुलामी का अपमान भरा जीवन जीना कलंक है, इसलिए युद्ध से पहले जब युधिष्ठिर के मन में पाप-पुण्य, धर्म-अधर्म की दुविधा पैदा होती है तो अर्जुन, भीम एक साथ आक्रोश से फट पड़ते हैं -

'अपना अनादर देखकर भी आज हम जीते रहे,
चुपचाप कायर से गरल के घूँट यदि पीते रहे,
तो वीर जीवन का कहाँ रहता हमारा तत्व है
इससे प्रकट होता यही हममें न अब पुरूशार्थ हैं।'

कवि के अनुसार यदि भारत गुलाम था, तो इसका कारण भारत से पुरूषार्थ का लोप था। कवि की दूसरी कृति रेणुका 1929-1925 के बीच लिखी गई। कुल 33 कविताओं का एक प्रतिनिधि संग्रह है। जिसका प्रकाशन 1935 में हुआ था। इसमें राष्ट्रीय कविताएँ संग्रहीत हैं। अतीत की गौरव गाथा और युगीन समस्याओं को उन्होंने पूरे तेज के साथ उजागर किया है इस काव्य की पहली कविता मंगल आवाह्न में वह श्रृंगी फूंक कर सोए प्राणों को जगाना चाहता है -
''**दो आदेश फूंक दूँ श्रृंगी**
उठे प्रभाती राग महान
तीनों काल ध्वनित हो स्वर में
जागें सुप्त भुवन के प्राण"

कवि ऐसे स्वरों को गाना चाहता है। जिससे सारी सृष्टि सिहर उठे। कवि देश में व्याप्त अत्याचार, आडंबर और अहंकार को दूर करने के लिए शंकर के ताडंव तत्जन्य ध्वंस की कामना करता है -
"**विस्फारित लख काल नेत्र फिर, कांपे त्रस्त अतनु मन ही मन**
स्वर-स्वर भर संसार, ध्वनित हो नगपति का कैलाश शिखर
नाचो हे नटवर नाचो नटवर।"
हुंकार कवि की राश्ट्रीय रचनाओं का दूसरा संकलन है जिसका प्रकाषन 1928 में हुआ।हुंकार का कवि तूफान का आह्वान करता है। कवि स्वर्ग तक को जला देने की इच्छा व्यक्त करता है। [5,6]'आलोक धन्वा' काव्य में दिनकर क्रान्ति द्रष्टा के रूप में उपस्थित होते हैं। उनका रूप बड़ा दिव्य और ज्वलंत है -
"**ज्योतिर्धर कवि मैं ज्वलित और मंडल का**
मेरा शिखण्ड अरूणाभ किरीट अनल का
रथ में प्रकाश के अश्व जुते हैं मेरे
किरणों में उज्जवल गीत गुंथे है मेरे।"
हुंकार की कविताओं में सर्वत्र मानव पीड़ा विद्रोह की ऊर्जा और बलिदान का स्वर गूँज रहा है। इसका धरातल सामाजिक और राष्ट्रीय दोनो हैं। इसमें आने वाले संदर्भ दोनों के है कवि को सामाजिक विशमता का बड़ा स्पश्ट

बोध है। वे समझते है कि एक ओर किसान मजदूर हैं जो श्रम करके भी भूखे रहते है, दूसरी ओर परोपजीवी वर्ग है जो शोषणजन्य भोग विलास का सुख लूट रहा है। कवि ने शोषित वर्ग की पीड़ा और षोशक सभ्य क्रूरता के तनाव को उद्घाटित किया है-

"बोले कुछ मत क्षुधित, रोटियाँ खान-छीन खाएँ यदि कर से,
यही षान्ति, जब वे आएँ, हम निकल कर जाएँ चुपके से निज घर से।"

यह कहा जाए तो अतिश्योक्ति नहीं होगी कि चेतना आग और रक्त में निवास करती है। आग और रक्त का संग्रह उनकी काव्य चेतना का शुचितम तीर्थ है। वस्तुतः क्रांति के यही दो कगार है। बाह्य परिस्थितियाँ जब व्यक्ति को तिरस्कृत कर व्यक्ति के समस्त आतंरिक मूल्यों और अहं के उद्रेकों पर तिरस्कार-मयी व्यंग्य की तीखी बौछारें बन जाती है तब उस आग की सृष्टि होती है जो पहले अज्ञात ज्वालामुखी की भाँति मन से सुलगती रहती है। इस आग की संधि-धमनियों में दौड़ते हुए रक्त से होती है। रक्त खौल उठता है तथा यही रक्त सामूहिक क्रांति शक्ति संगठित करता है।

राश्ट्रीय चेतना से परिपूर्ण अपनी रचनाओं में उन्होंने अपने विषाल देष के प्रति अनुराग का उच्च भाव राश्ट्र वंदना के रूप में मुखरित किया है जो कि निम्नांकित पंक्तियों में दृश्टव्य है-

"मेरे नगपति मेरे विषाल
साकार, दिव्य, गौरव, विराट
पौरूश के पूँजीभूत ज्वाल
मेरे जननी के हिम-किरीट
मेरे भारत के दिव्य भाल।"

कुरूक्षेत्र 1943 में प्रकाशित दिनकर का प्रथम प्रबंध काव्य है। विचारों की दृष्टि से ही कवि इसे प्रबंध काव्य मानता है। कवि कुरूक्षेत्र में राष्ट्रवादी एवं मानवतावादी दृष्टिकोण का ही विशेष समर्थन करता है।

दिनकर ने कुरूक्षेत्र में युद्ध के दो स्तर स्पश्ट किये है। बाह्य और आतंरिक। सनातन काल से चलने वाला देवासुर संग्राम आतंरिक युद्ध है, शेष सभी बाह्य दोनो के कारण समान और लगभग एक से है। जब तक मन में विकारी भाव रहेंगे तब तक समाज में युद्ध अवश्यंभावी है। कुरूक्षेत्र के छठे सर्ग में इसी अखण्ड शांति का संदेश कवि देता है। कवि का द्वंद है-

"**है बहुत देखा सुना मैंने मगर**
भेद खुल पाया धर्माधर्म का
आज तक ऐसा कि रेखा खींच कर
बाँट दूँ मैं पाप को औ पुण्य को।"

कुरूक्षेत्र अपने समय और समाज के प्रति जागृति का संदेश देने वाला समन्वय की भूमि पर स्थित काव्य है जहाँ युद्ध की अनिवार्यता, धर्म एवं शान्ति के मंगल की शुभकामना सन्निहित है।राष्ट्रकवि दिनकर की रचनाएँ राष्ट्रीय भावनाओं से ओत-प्रोत है। सामधेनी का प्रकाशन सन् 1946 में हुआ था। सन् 1941 से 1946 तक का काल देश में क्रांति का काल रहा है। समग्र देश का प्रतिशोध और प्रतिहिंसा का स्वर इसमें व्यक्त हुआ है। इस कृति का मूल स्वर क्रांति ही है।[1,2,3]

कवि पुरोधा बनकर क्रांति यज्ञ में बलिदानों की समिधा द्वारा अग्नि प्रज्जवलित करना चाहता है। सामधेनी की प्रथम कविता 'अचेतमृत-अचेतन' शिला मंगलाचरण रूप है। संग्रह के प्रथम सात गीत भाव प्रधान मुक्तक है, उनमें कवि

के राष्ट्रीय भाव बड़ी प्रवणता से व्यक्त हुए हैं। कवि की दृढ़ता रागपूर्ण स्वर में व्यक्त हुई है। वह चाँद से बातें करते हुए समय उसे छिपी चेतावनी तो दे ही देता है-

"**स्वर्ग के सम्राट को जाकर खबर कर दे,**
रोज ही आकाष चढ़ते जा रहे हैं वे,
रोकिए जैसे बने इन स्वप्न बालों को
स्वर्ग की हो और बढ़ते आ रहे हैं वे।"

सामधेनी में कवि ने काव्य का विषय स्वर्ग की अपेक्षा धरती को चुना है। हुंकार का क्रान्तिकारी कवि स्थिर हो गया है। जो युद्ध के संदर्भ में शांति की ओर विचारशील हो गया है। श्री विश्वनाथ सिंह के शब्द निष्कर्ष रूप में प्रस्तुत करना पर्याप्त है- ''दिनकर का यह काव्य संग्रह सामधेनी इस प्रकार यौवन के उद्दाम वेग की वाणी ही नहीं युग की वाणी भी है।"

इतिहास के आँसू में कवि की दस प्रारंभिक ऐतिहासिक संग्रहीत हैं। इन कविताओं का रचनाकाल 1932 ई0 से 1948 ई0 तक है। ये सभी कविताएँ हमारे इतिहास से सम्बन्धित है, किन्तु कवि का राश्ट्रप्रेम और उसका ओजपूर्ण स्वर भी इनमें मुखरित है। इस काव्य संग्रह के अन्तर्गत कवि ने इतिहास के महान योद्धाओं की वीरता का गुणगान किया है। सामान्यतः कवि ने वर्तमान की समस्याओं के लिए अतीत का द्वार खटखटाया है। इस प्रक्रिया में उसके मानस में जिन विषेश व्यक्तियों के चित्र उभरते है उनमें गौतम बुद्ध और अषोक का स्थान प्रमुख है वर्तमान का निमंत्रण लेकर जब कवि अतीत के द्वार पर पहुँचता है तो उसे विषेशकर बलषाली मगध अथवा नालंदा और वैषाली की ही याद आती है कवि पाटलिपुत्र की गंगा से पूछता है कि वह कौन सा विषाद है कैसी व्यथा है जिस कारण आज उसके प्रवाह में षिथिलता दृश्टिगोचर हो रही है। गंगा साक्षी है हमारे उस गौरवपूर्ण अतीत की जिसकी तूती संपूर्ण भारत में ही नहीं वरन् विदेषों में भी बोलती थी, गुप्त वंष की गरिमा, अषोक की करूणा, गौतम का षांति सन्देष, लिच्छिवियों की वैशाली सभी की स्मृति उसके मानस में अवष्य ही सुरक्षित होगी। 1935 के बाद की रचित ऐतिहासिक कविताओं में (जो यहाँ संगृहीत है) कवि केवल अतीत के गौरव की स्मृतिमात्र से संतुश्ट नहीं हो जाता, वरन् उनसे प्रेरणा लेकर भारतमाता की गुलामी की बेड़ी को काटने की प्रेरणा भी देता है। कवि का आह्वान है-

"**समय माँगता मूल्य मुक्ति का, देगा कौन माँस की बोटी**?
पर्वत पर आदर्श मिलेगा खाएँ चलो घास की रोटी।

परतंत्रता की बेड़ियों में जकड़ी हुई भारतभूमि से वह स्पष्ट शब्दों में पूछता है-

ओ भारत की भूमि वंदिनी! ओ जंजीरो वाली!
तेरी ही क्या कुक्षि फाड़कर जन्मी थी वैशाली?"

इतिहास के ये आँसू कवि को कितने प्रिय है हमारे लिए कितने अनमोल है इसका पता हमें इन रचनाओं को पढ़ने के बाद ही लगता है।राष्ट्रीय चेतना से ओत-प्रोत कवि का आगे काव्य संग्रह धूप और धुआँ का प्रकाषन 1953 में हुआ और इसमें कवि भी 1947 से 1951 तक की रचनाओं का संग्रह है। समीक्ष्य काव्यकृति में स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चा के राश्ट्रीय जनजीवन की अभिव्यक्ति है कवि इसके नामकरण के बारे में लिखता है- ''स्वराज्य से फूटने वाली आषा की धूप और उसके विरूद्ध जन्मे हुए असंतोश का धुआँ, ये दोनों ही इन रचनाओं में यथास्थान प्रतिबिंबित मिलेंगे। अतएव जिनकी आँखे धूप और धुआँ दोनों को देख रही हैं। इसके लिए यह नाम कुछ निरर्थक नहीं होगा।"

संग्रह की रचनाओं में स्वतंत्रता, राश्ट्र हित की भावनाएँ तथा बापू और अन्य बलिदानियों के प्रति श्रद्धांजलि के भाव स्पश्ट हुए हैं। कवि को वर्तमान में जो तृशा दिखाई दे रही है उसे वाणी प्रदान की है। इस ग्रंथ के विशय में कवि ने स्वयं लिखा है-

''स्वराज्य से फूटने वाली आषा की धूप और उसके विरूद्ध जन्मे हुये असन्तोश का धुआँ ये दोनो इन रचनाओं में यथा स्थान प्रतिबिम्बित मिलेगी। अतएव जिसकी आँखे धूप और धुआँ देख रही है उसके लिए यह नाम कुछ निरर्थक नहीं होगा।" धूप और धुआँ काव्य संग्रह की रचना स्वतंन्त्रता, राष्ट्र कल्याण, बलिदानियों पर श्रद्धा सेनानी की वीर भावना आदि ज्वलन्त विशयों से परिपूर्ण है। यथा-

"**माँ का अंचल है फटा हुआ, इन दो टुकड़ो को सीना है।**
देखे देता है कौन लहू, दे सकता कौन पसीना है।"

दिनकर की सोच राष्ट्रवादी सोच है और स्वदेश गौरव तथा स्वाभिमान उनमें कूट-कूटकर भरा है। कवि गाँधी जी की विचारधारा से प्रभावित होने के कारण उनका राष्ट्रवाद और अधिक पुष्ट तथा मजबूत बन गया है, किन्तु वे अहिंसा में विश्वास न करते हुए हिंसा को मूल में रखते हुए कहते हैं शांति और अहिंसा के सिद्धांतो को अपनाता है तो इससे उसकी कायरता ही उजागर होती है।

परषुराम की प्रतीक्षा सन् 1962 में भारत-चीन की पृष्ठभूमि पर लिखी गई वीरता तथा ओज से परिपूर्ण कविताओं का संग्रह है उस समय कवि ने ओजमयी वाणी में इस आपद्धर्म को प्रकट किया है, जो किसी महान राष्ट्रवादी कवि रचनाकार के ही बूते की बात है। गाँधीवाद की उपासना में तत्कालीन सत्ता ने जिस मार्ग का आश्रय लिया कवि उससे संतुष्ट कैसे रह सकता है? अतः उसने यहाँ के वीरों को परशुराम के रूप में देखा तथा कवि ने गाँधीवादी अहिंसा को त्यागकर परशुराम की तरह धर्म और जाति की रक्षा के लिए शस्त्र ग्रहण करने का अनुरोध किया-

"**चिंतको! चिंतना की तलवार गढ़ो रे!**
ऋशियों! कृषान, उद्दीपन मंत्र पढ़ो रे!
योगियों! जगो, जीवन की ओर बढ़ो रे
बंदूको पर अपना आलोक मढ़ो रे!"

कवि परषुराम की प्रतीक्षा काव्य संग्रह में चीन के विरूद्ध पूरे जोर से युद्ध का समर्थन करते है और स्वतंत्रता की रक्षा के लिए सभी कुछ न्यौछावर कर देने तथा अपने आपको बलिदान कर देने की भावना को प्रोत्साहित करते हैं-[4,5,6]

"**दासत्व जहाँ है, वहीं स्तब्ध जीवन है।**
स्वातंत्रय निरंतर समर, सनातन रण है।
स्वातंत्रय समस्या नहीं आज या कल की
जागर्ति तीव्र वह घड़ी-घड़ी, पल-पल की।
कवि आगे यह आकांक्षा प्रकट करता है कि-
तिलक चढ़ा मत और हृदय में हूक दो,
दे सकते हो तो गोली बंदूक दो।"

कवि के अनुसार युद्ध के समय तटस्थ बने रहकर चुप बैठे रहना भी कायरता है। ऐसे तटस्थ और चालाक लोगों को फटकारता हुआ कवि कहता है-

"**अब समझा, चुप्पी कदर्यता की वाणी है,**
बहुत अधिक चातुर्य आपदाओं का घर है,
दोशी केवल वही नहीं, जो नयनहीन था,
उसका भी है पाप, आँख थी जिसे, किन्तु जो
बड़ी-बड़ी घड़ियों में मौन तटस्थ रहा है।"

दिनकर के काव्य का अवलोकन करने से यह ज्ञात होता है कि उनका काव्य राष्ट्रीय चेतनाओं से परिपूर्ण है कवि ने शुरूआत ही राष्ट्रीय चेतना से सम्बन्धित काव्य से की है तथा अलग-अलग संदर्भो में राष्ट्रीय चेतना को अपने काव्य में दर्शाया है। कवि दिनकर ने अपने युग का प्रतिनिधित्व अपने काव्य में किया है। दिनकर की सोच राष्ट्रवादी सोच है और स्वदेश गौरव तथा स्वाभिमान उनमें कूट-कूटकर भरा है, कवि गाँधीवादी विचारधारा से प्रभावित है किन्तु वे अहिंसा के बल पर नहीं बल्कि हिंसा के बल पर देष को आजाद कराना चाहते है। कवि स्वतंत्रता की रक्षा के लिए सभी कुछ न्यौछावर कर देने तथा स्वयं को भी बलिदान कर देने की भावना को प्रोत्साहित करते है।

निष्कर्ष

दिनकर राष्ट्रीय भाव धारा के प्रमुख कवि हैं। इस प्रसंग में ध्यान देने की बात यह कि राष्ट्रीय भाव धारा में कई अंतर्धाराएँ हैं, जैसे राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम की कई धाराएँ हैं। सभी धाराओं में समानता एक बात में है कि वे सभी ब्रिटिश सत्ता से भारत को मुक्त करने के पक्ष में हैं। सभी स्वतंत्रता के पक्ष में हैं, लेकिन अंग्रेजों से लड़ने के तरीकों के बारे में, स्वतंत्रता के स्वरूप के बारे में, स्वतंत्र भारत की व्यवस्था के बारे में उनमें तीखा मतभेद है। यह मतभेद राजनीति में ही नहीं साहित्य में भी स्पष्टतः प्रतिबिंबित होता रहा है। यों तो समस्त आधुनिक साहित्य का संबंध राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम से है, राष्ट्रीय कविता, स्वच्छंदतावादी कविता, छायावादी कविता, प्रगतिशील कविता इन सबका संबंध किसी न किसी तरह स्वाधीनता संग्राम की चेतना से जोड़ा जा रहा है, लेकिन राष्ट्रीय कविता से जो खास या रूढ़ अर्थ लिया जाता रहा है, वह यही है कि प्रत्यक्षतः स्वाधीनता संग्राम को विषय बना कर लिखी गई कविता राष्ट्रीय कविता है। इस राष्ट्रीय कविता में भी मैथिलीशरण गुप्त, माखन लाल चतुर्वेदी, रामनरेश त्रिपाठी, सुभद्रा कुमारी चौहान और रामधारी सिंह दिनकर, सबकी अपनी अलग विशेषताएँ हैं और उनमें पारस्परिक फर्क भी है। दिनकर की भावनात्मक विशिष्टता को समझने के लिए इस फर्क पर गौर करना जरूरी है।

मैथिलीशरण गुप्त को स्वयं दिनकर जी ने पुनरुत्थानवादी कवि कहा है। राष्ट्रीयता के भीतर एक प्रवृत्ति पुनरुत्थान की रही है। यों मैथिलीशरण गुप्त पुनरुत्थानवादी थे, यह हिंदी आलोचना में विवादास्पद है। अतीत की ओर वे देखते हैं, वहाँ जाते भी हैं लेकिन मैं समझता हूँ कि उनका ध्यान मुख्य रूप से स्वाधीनता पर रहता है। महाभारत या रामायण से या इतिहास के और किसी दौर से कथा एवं चरित्र उठाते हैं, तो उनको आधुनिक राष्ट्रीयता की दृष्टि से ही देखते और प्रस्तुत करते हैं। यह कहा जा सकता है कि गुप्त जी की राष्ट्रीय चेतना कांग्रेस के नेतृत्व में विकसित राष्ट्रीय धारा से मेल खाती है। रामनरेश त्रिपाठी यद्यपि कभी अतीत में नहीं जाते, अपने सामने के आंदोलन की घटनाओं को समेट कर कथा तैयार करते हैं, लेकिन उनकी कथा और चरित्रों की चेतना भी कांग्रेस नेतृत्व वाली राष्ट्रीयता से भिन्न नहीं है। माखनलाल जी अवश्य स्वाधीनता की क्रांतिकारी धारा से जुड़े रहे हैं और

उनकी काव्य चेतना उपर्युक्त कवियों से भिन्न है और उसकी तह में क्रांतिकारी परिवर्तन के लिए की गई कुर्बानी है। बालकृष्ण शर्मा नवीन भी इसी काव्य चेतना को अंगीकार करते हुए दिखते हैं। सुभद्रा कुमारी चौहान का संबंध भी क्रांतिकारी चेतना से ही है। उन्होंने अपनी एक कविता में लिखा है कि मुझे कहा कविता लिखने तो मैंने लिखा जालियाँवाला बाग। इससे समझा जा सकता है कि उन्होंने 1857 के संग्राम पर कविता क्यों लिखी।उपर्युक्त सभी कवियों से भिन्न है दिनकर की राष्ट्रीय चेतना। स्वाधीनता संग्राम में प्रायः हर दौर में बीसवीं सदी के प्रारंभ से ही कांग्रेस से भिन्न क्रांतिकारी संघर्ष होता रहा। इसके पीछे ब्रिटिश सत्ता को शीघ्र से शीघ्र उखाड़ फेंकने की जो आक्रोश भरी चेतना सक्रिय रही है, वह इस सदी के तीसरे चक्र में सबसे अधिक संगठित और वैकल्पिक व्यवस्था के बारे में अधिक विचार संपन्न तथा जागरूक रही है। असहयोग आंदोलन के स्थगन के बाद आम तौर से युवा पीढ़ी में और खास करके क्रांतिकारियों में अभूतपूर्व क्षोभ एवं रोष व्याप्त हो गया। इस दौर में देश भर में वामपंथी और क्रांतिकारी गतिविधियाँ आकर्षण पैदा कर रही थीं। भगत सिंह, चंद्रशेखर आजाद आदि युवा पीढ़ी के दिल में बस रहे थे। यही दौर है जब दिनकर की चेतना रूप लेती है। इस दौर की विशेषता यह है कि भारतीय राष्ट्रवाद उग्र रूप ले रहा था। इसके साथ ही देश के विभिन्न हिस्सों में मजदूर किसान आंदोलन छेड़ रहे थे। कांग्रेस ने भी किसानों को आकृष्ट करने के लिए वल्लभ भाई पटेल के नेतृत्व में बारदौली में किसान सत्याग्रह का आयोजन 1929 में किया और इसी वर्ष देश की नई पीढ़ी को आकृष्ट करने के लिए जवाहरलाल नेहरू को कांग्रेस का अध्यक्ष बना दिया। दिनकर जी ने बारदोली सत्याग्रह पर काव्य रचना की, लेकिन चौथे दशक में रचित उनके काव्य, खास करके रेणुका और हुंकार की कविताओं का अध्ययन करने से स्पष्ट होता है कि दिनकर की कविताओं में उग्र राष्ट्रवाद की प्रवृत्ति प्रबल थी। उग्र राष्ट्रवाद कविता में उत्तेजक भावों और आवेगों के साथ उत्तेजनापूर्ण भाषा में व्यक्त हुआ है। स्वयं दिनकर जी ने इस तरह की अपनी अभिव्यक्ति को गर्जन तर्जन कहा है। अतः ओजपूर्ण अभिव्यक्ति से आगे की चीज है। लेकिन मैं यहाँ कहना चाहता हूँ कि उग्र राष्ट्रवाद में एक प्रकार की अराजकता होती है, जो किसी प्रकार के विधान को मान कर नहीं चलती। दिनकर एक कविता में कहते हैं –

पूछेगा बूढ़ा विधाता तो मैं कहूँगा

हाँ तुम्हारी सृष्टि को हमने मिटाया।

सृष्टि को मिटाने की बात तो है, लेकिन उसका कोई विकल्प रचने की बात दिनकर की कविताओं में नहीं मिलती। वे मनुष्य के शोषण उत्पीड़न से दुखी हैं, इस अन्याय के खिलाफ जोर से बोलते हैं, लेकिन अन्याय का दृश्य चित्रण यानी संदर्भ नहीं के बराबर मिलता है, और अन्याय के खिलाफ संघर्ष में जनता की भूमिका तो इनकी कविताओं में कहीं नहीं है।

उग्र राष्ट्रीय भावों को व्यक्त करने वाली प्रसिद्ध कविता है 'हिमालय' जिसकी ये पंक्तियाँ अत्यंत प्रसिद्ध हैं –

रे रोक युद्धिष्ठिर को न यहाँ

जाने दे उनको स्वर्ग धीर

पर फिरा हमें गांडीव गदा

लौटा दे अर्जुन भीम वीर।

गांधी जी नमक सत्याग्रह छेड़ कर भी गोलमेज सम्मेलन में चले गए, और इधर क्रांतिकारियों ने अपने तरीके से ब्रिटिश साम्राज्य को चुनौती दी। भगत सिंह और चंद्रशेखर आजाद की शहादत देश भर में गूँज रही थी। यह

समझने में दिक्कत नहीं है कि दिनकर की उपरोक्त पंक्तियों में युधिष्ठिर गांधी का प्रतिनिधित्व कर रहे है और अर्जुन भीम जैसे वीर भगत सिंह और चंद्रशेखर आजाद का। क्रांतिकारी चेतना को देश की गुलामी अखरती है, यह बात अत्यंत दर्दनाक और अपमानजनक है। 'हिमालय' में ही कवि कहता है –

अरे मौन तपस्या लीन यती

पल भर को तो कर दृगुन्मेष।

रे ज्वालाओं से दग्ध विकल

है तड़प पूछ पद पर स्वदेश।

यह मार्मिक साथ ही उत्तेजक प्रश्न है कि यहाँ तुम्हारे पैरों पर गुलामी की आग में झुलसा विकल प्यारा स्वदेश पड़ा हुआ है और तुम मौन तपस्या में लीन हो!

ध्यान देने की बात है कि भगत सिंह और चंद्रशेखर आजाद साम्राज्यवाद के विकल्प के रूप में समाजवाद का उद्घोष कर रहे थे, लेकिन दिनकर शोषण के खिलाफ गरज कर भी समाजवाद का जिक्र नहीं करते। विकल्प के अभाव में ही यह राष्ट्रीयता अराजकता का रूप ले लेती है। उग्र राष्ट्रवाद दिनकर की कविताओं में सामधेनी की कविताओं तक चलता है। 'प्यारा स्वदेश' गुलाम तो है, साथ में उसका भयानक शोषण भी होता है। नीचे की पंक्तियों को देखें –

कितनी मणियाँ लुट गईं! मिटा

कितना मेरा वैभव अशेष

तू ध्यानमग्न ही रहा, इधर

वीरान हुआ प्यारा स्वदेश।

'वीरान हुआ प्यारा स्वदेश' जैसी पंक्ति देश की दुर्दशा को इस तरह व्यक्त करती है कि जैसे यह दुर्दशा मनुष्य को असह्य बना दे। स्वदेश को मुक्त करने के लिए युवा पीढ़ी कुछ भी कर सकती है। करने को तत्पर है –

नए सुरों में थिंजिनी बजा रही जवानियाँ

लहू में तैर तैर के नहा रही जवानियाँ

जवानी यानी युवा पीढ़ी लहू में तैर तैर के नहा रही है

यह अपार कुर्बानी का प्रमाण है,

लहू में तैरना कोई मामूली बात नहीं है।

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 6.551 | Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 10, Issue 4, July 2023 |

दिनकर स्वच्छंदतावाद के कवि कहे जाते हैं। बंधनों को, रूढ़ियों को तोड़ना कवि की मुख्य विशेषता मानी जाती है। लेकिन मैं समझता हूँ कि इसके पीछे व्यक्ति स्वातंत्र्य की भावना काम करती रहती है। व्यक्ति स्वातंत्र्य का ही एक रूप यह है कि कवि या मनुष्य, मात्र अपनी अथवा अपने व्यक्तित्व की स्वतंत्रता को जरूरी समझता है चूँकि भारत गुलाम था, इसलिए स्वतंत्रता प्राथमिक शर्त थी। यह भी उल्लेखनीय है कि सामाजिक रूढ़ियों को तोड़े बिना व्यक्ति स्वातंत्र्य की स्थिति संभव नहीं है। इस दृष्टि से दिनकर के काव्य को देखें तो स्पष्ट अनुभव होता है कि व्यक्ति स्वातंत्र्य उनकी चिंता का विषय नहीं है। यूरोप में स्वच्छंदतावाद के उद्भव और विकास की जो स्थितियाँ और परिस्थितियाँ थीं, वे भारत में या हिंदी क्षेत्र में नहीं थीं। स्वच्छंतावाद की प्रवृत्ति हिंदी में भी साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष से जुड़ी हुई है। इस प्रवृत्ति की एक विशेषता यह है कि सामाजिक विषमता के प्रति उसमें आक्रोश है, उसका खात्मा करने की भावना उसमें व्यक्त होती है, लेकिन विषमता के बुनियादी कारणों की खोज नहीं की जाती है। समाज में उथल पुथल तो कवि चाहता है, लेकिन बुनियादी और क्रांतिकारी परिवर्तन से उसे डर भी लगता रहता है। ऐसे कवि में स्वच्छंदता की भावना और चेतना अद्‌भुत कल्पना प्रवण, अव्यावहारिक और मिथकीय बिंबों, प्रतीकों, ऐतिहासिक व्यक्तित्वों के माध्यम से व्यक्त होती है। स्वच्छंदतावाद की यह विशेषता दिनकर जी में भरपूर दिखाई पड़ती है। हिमालय कविता में ही बुद्ध, अशोक, विद्यापति आदि आते रहते हैं। शंकर, खास कर के तांडव नृत्य करने वाले, भी इनकी कविताओं में बहुत बार आते हैं। ये बिंब, प्रतीक, रूपक आदि आधुनिक समाज और मनुष्य को अतीत में ले जाने के लिए नहीं आते बल्कि कवि की उद्दाम भावना को व्यक्त करने का माध्यम भर हैं। इस रूप में ये बिंब, प्रतीक, रूपक आदि मिथकीय, पौराणिक और ऐतिहासिक प्रतीकों और चरित्रों की निरपेक्षता ही सिद्ध करते हैं। जनता की सक्रिय भूमिका कहीं है नहीं, और पौराणिक एवं ऐतिहासिक प्रतीक आदि निरर्थक सिद्ध होते जा रहे हैं, ऐसी हालत में ऊपर ऊपर प्रगतिशील दिखने वाला स्वच्छंदतावाद अंततः यथास्थितिवादी बन कर रह जाता है। दिनकर के काव्य को इस दृष्टि से देखें, तो यह अनुभव सहज ही होगा।[1,2]

दिनकर के स्वच्छंदतावाद की एक विशेषता यह है कि उनकी काव्य चेतना में विविधता है, विषयवस्तु की दृष्टि से बहुलता है। उसमें देशभक्ति से सराबोर राष्ट्रीय चेतना है। विषमता को मिटा कर सामाजिक समानता स्थापित करने की भावना है। कहीं ईश्वर और सर्वशक्तिमान अदृश्य सत्ता को चुनौती देने की चेतना है, तो कहीं ईश्वर से प्रार्थना भी है। कुरुक्षेत्र जैसे ओजस्वी काव्य में वह एक जगह कहते हैं –

धर्म का दीपक, दया का दीप

कब जलेगा, कब जलेगा

विश्व में भगवान।

ईश्वर की सत्ता को चुनौती देने वाला कवि 'कुरुक्षेत्र' जैसे काव्य में, यानी भीष्म जैसे महारथी को केंद्र बना कर रचे गए काव्य में कवि जब ईश्वर से पूछता है – 'धर्म का दीपक, दया का दीप कब जलेगा – कब जलेगा विश्व में भगवान' तो लगता है कि कवि चेतना दयनीय हो गई है – कब जलेगा, कब जलेगा – दो बार कहने से अशक्तता और अधीरता का बोध होता है।

असल में दिनकर जी 'आवेग' के कवि हैं। 'रेणुका' की पहली ही कविता में कवि कहता है –

भावों के आवेग प्रबल

मचा रहे उर में हलचल।

यदि आवेग का भारतीय अर्थ लें तो वह यह है कि आवेग तैंतीस संचारी भावों में एक है। यह इस सिद्धांत में स्थायी भाव नहीं है। लेकिन यह कतई जरूरी नहीं है कि आधुनिक काव्य बोध और काव्य की आधुनिक रचना प्रक्रिया में किसी पारिभाषिक शब्द का शास्त्रीय और स्थिर अर्थ लिया जाए। आधुनिक भाव बोध में और बदलते हुए यथार्थ की स्थिति में काव्य रचना के लिए कोई स्थायी भाव मान्य नहीं हो सकता। दिनकर के यहाँ भी काव्य रचना के लिए कोई स्थायी भाव नहीं है। उनकी काव्य चेतना गतिशील, संचरणशील और हलचल से भरी हुई है। लेकिन इसमें भी दिनकर जी की विशेषता है कि उनका मनोवेग कभी पस्ती और निराशा का शिकार नहीं होता। उनका काव्य अक्सर उमंग, उत्साह और अतिरेक की मनोदशा को व्यक्त करता है। इसी मनोदशा का प्रभाव है कि दिनकर हमेशा ÷गांधी जी' के प्रभाव का निषेध करते दिखते है। 'हिमालय' में 'युद्धिष्ठिर' को हम पहचान चुके हैं, 1939 में विश्वयुद्ध छिड़ जाने पर जब देश के लोग अंग्रेजों के खिलाफ भारत में लड़ाई छेड़ देने के लिए उतावले हो रहे थे तब गांधी जी बहुत दिनों तक मौन धारण किये हुए रहे। इस पर दिनकर ने एक कविता लिखी – ओ दुविधाग्रस्त शार्दूल बोल!

यह कविता भी गांधीवादी तरीके का विरोध करती है, या उस पर असंतोष व्यक्त करती है। लेकिन गांधी जी की हत्या पर कवि विह्वल होकर कविताएँ लिखता है, जिनमें भावावेग भरा है। इसी तरह का एक उदाहरण यह है कि 26 जनवरी 1950 में भारतीय गणतंत्र का संविधान लागू किया गया तो दिनकर ने एक कविता लिखी जिसकी मशहूर पंक्ति है – 'सिंहासन खाली करो कि जनता आती है' लेकिन 1962 में भारत चीन युद्ध छिड़ जाने पर 'परशुराम की प्रतीक्षा' लिखते हैं, जिसमें जनता की भूमिका कहीं है ही नहीं। 'परशुराम की प्रतीक्षा' अपने आप में जनतंत्र का निषेध है। यहाँ यह कहना शायद उचित हो कि स्वच्छंदतावाद में एक प्रवृत्ति नायक (हीरो) या महानायक पर भरोसा करना, उसका आह्वान करना भी है। असल में स्वच्छंदतावाद दिनकर की कविता में आकर सबसे भिन्न रूप ग्रहण कर लेता है जो किसी छायावादी या किसी राष्ट्रवादी कवि में नहीं है। जब कोई पौराणिक या ऐतिहासिक महापुरुष नहीं मिलता है, तो कवि अपने को सामने करता है, यानि अपने व्यक्तित्व की शक्ति को नायक के रूप में प्रस्तुत करता है। 'हाहाकार' शीर्षक कविता में कवि घोषणा करता है –

दूध दूध ओ वत्स तुम्हारा दूध खोजने जाता हूँ मैं

हटो व्योम के मेघ पंथ से स्वर्ग लूटने आता हूँ मैं

दूध के लिए रोते बच्चों के लिए दूध खोजने के लिए जाने की घोषणा कर रहा है कवि। स्वर्ग को लूटने के लिए जाने के रास्ते में पड़ने वाले मेघों से कवि कहता है हट जाओ। हिमालय को कवि ने पौरुष का पुंजीभूत ज्वाल कहा है। ऐसी पंक्तियों से झाँकता कवि का व्यक्तिव भी पौरुष का पुंजीभूत ज्वाल मालूम पड़ता है। यह असल में कवि का अथवा यौवन के दौर से गुजर रहे मनुष्य का प्रज्ज्वलित असंतोष है, जो अदम्य पुरुषार्थ रूप लेकर प्रकट होता है। इस पुरुषार्थ को व्यक्त करने वाली पंक्तियाँ दिनकर में ढेर सारी हैं –

चढ़ कर विजित श्रृंगों पर झंडा वही उड़ाते हैं।

अपनी ही उँगली पर जो खंजर की जंग छुड़ाते हैं।

ऐसी पंक्तियाँ हिंदी कविता में भावना, उत्तेजना और भाषा की दृष्टि से विलक्षण हैं।[3,4]

दिनकर में धरती के प्रति आकर्षण है, स्वर्ग के प्रति नहीं। उसकी काव्य चेतना ही नहीं, मानवीय चेतना का भी निर्माण इसी धरती पर, अपने गाँव घर के वातावरण में हुआ है। उनमें स्वर्ग के प्रति कोई आकर्षण नहीं है। इस धरती पर कवि के लिए 'रज कण से ले पारिजात तक कोई रूप अगेय नहीं'। किसी भी वस्तु पर कविता लिखी जा सकती है, लेकिन दिनकर वस्तुओं पर कम, उनके अपने मन पर पड़े प्रभाव को कविता के रूप में, अदम्य भाषा शैली में, बड़ी सफाई से व्यक्त करते हैं। 'रेणुका' में उन्होंने कह दिया –

व्योम कुंजों की परी अभिकल्पने

भूमि को निज स्वर्ग पर ललचा नहीं

पा न सकती मृत्ति उड़ कर स्वप्न को

युक्ति हो तो आ बसा अलका यहीं।

धरती के प्रति आकर्षण और स्वर्ग के प्रति विकर्षण की अभिव्यक्ति कवि करता रहा है। दिनकर जब कविता में कहते हैं कि राम और कृष्ण कहाँ हैं, चंद्रगुप्त, अशोक कहाँ हैं, तो यह वास्तव में आधुनिक युग में उनकी निरर्थकता के प्रति उलाहना है। यह उलाहना निम्नलिखित पंक्तियों में बड़ी खूबी से व्यक्त हुई है –

शिव के रहते निरीह निर्बल

लोग दमित हो रहे हैं, राष्ट्र

उजड़ रहा है, यह सब क्यों?

इस कथन से तो सीधे यह प्रश्न उठता है कि क्या सचमुच शिव हैं। स्वामी विवेकानंद अपने जीवन के अनुभवों के आधार पर यह प्रश्न उठाने लगे थे कि क्या सचमुच ईश्वर है? उसके रहते दुनिया में इतना अन्याय क्यों! इतना जुल्म क्यों? दिनकर इस प्रश्न का तार्किक विवेचन करके समुचित निष्कर्ष तक नहीं पहुँचते। इसीलिए तो अंतिम दौर में कवि हारे को हरिनाम लिखता है।

राष्ट्रीयता, आवेग, आवेश, मनोवेग उत्तेजना आदि के कवि के रूप में दिनकर की ख्याति है। लेकिन दिनकर के काव्य को समग्र रूप में देख कर ही उनकी प्रवृत्ति की पहचान करनी चाहिए। मुझे ऐसा महसूस होता है कि दिनकर के मन में, उनकी चेतना में दो प्रकार की प्रवृत्तियाँ हमेशा रही हैं। एक तो उत्तेजना और आक्रोश भरी राष्ट्रीय एवं सामाजिक चेतना है दूसरी प्रवृत्ति इस संसार का जो 'सांसारिक' आकर्षण है, मन की जो शांत या निवेद मूलक भावना है, लोक प्रचलित अर्थ में 'सुंदरता' का आनंद लेने की प्रवृत्ति है, वह भी दिनकर में शुरू से है। 'द्वंद्वगीत' का प्रकाशन तो सन् 39 या 40 में हुआ, लेकिन कवि की चेतना में जीवन का उत्सर्ग करने और जीवन का भोग करने की प्रवृत्तियों का द्वंद्व शुरू से रहा है। 'द्वंद्वगीत' की भूमिका में दिनकर स्वयं कहते हैं – 'द्वंद्वगीत के पदों का आरंभ उन दिनों हुआ था, जब कविता की गर्मी मेरी धमनियों में पहलेपहल महसूस होने लगी थी और मैं आग की पहली लपट के बहुत करीब था। याद आता है कि इसके पहले पद सन 1932 ई. में लिखे गए थे और प्रायः सन 1939 ई. तक दूसरे पदों की कटाई छँटाई और नए पदों की रचना चलती ही रही।' वे फिर कहते है – मेरे गर्जन तर्जन में मेरा गान लुप्त हो गया, यहाँ तक कि 'द्वंद्वगीत' की रागिनी 'रसवंती' से भी पीछे छूट गई'। यह

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 6.551 | Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 10, Issue 4, July 2023 |

तो द्वंद्वगीत के पदों के बारे में कवि का उद्‌घाटन है। लेकिन मैंने जिस द्वंद्व की बात ऊपर कही है, वह इससे अलग उनकी कविताओं में जहाँ तहाँ व्यक्त होती रही। 'रेणुका' में ही 'परदेशी' शीर्षक कविता है, जिसमें कवि कहता है –

माया के मोहक वन की क्या कहूँ कहानी परदेशी?

भय है, सुन कर हँस दोगे मेरी नादानी परदेशी।

भय है लोकनिंदा का, समाज का कि देश गुलाम है, और यह युवा कवि माया मोहक वन की कहानी कह रहा है। माया का मोहक वन तो यह संसार है, माया उसके भोग का आकर्षण है, 'परदेशी' यह मनुष्य है, जो 'परलोक' से आया है इस धरती पर, इस कविता की पूरी चेतना ही भिन्न है राष्ट्रीयता अथवा सामाजिकता से। इसी चेतना ने चुपके चुपके द्वंद्वगीत की रचना करवाई और यही चेतना आगे चल कर देश के आजाद हो जाने के बाद 'उर्वशी' में व्यक्त होती है। उर्वशी की रचना 1953 ई., से ही शुरू हो गई थी।

दिनकर के काव्य विकास पर गौर करने से यह स्पष्ट हो जाता है, कि 'सामधेनी' से ही उनके काव्य में एक नए दौर का आरंभ होने का संकेत मिलने लगता है। 'सामधेनी' की चर्चा भी आम तौर से रेणुका और हुंकार के साथ की जाती रही है, लेकिन इस संग्रह में कई भाव स्तरों की कविताएँ हैं। 'लहू में तैर तैर नहाने' वाली जवानी में जोश है, तो यह कविता भी गौर करने लायक है –

बटो ही धीरे धीरे गा !

बोल रही जो आग उबल तेरे दर्दीले स्वर में

कुछ वैसी ही शिखा एक सोई है मेरे उर में

जलती बत्ती छुला न यह निर्वासित दीप जला।[5]

ऐसा लगता है कि कवि को यह एहसास हो गया था कि अब देश आजाद होगा, फिर गुलामी के खिलाफ संघर्ष की उत्तेजना और गर्जन तर्जन का प्रसंग समाप्त हो जाएगा। इसलिए कवि ने अपनी भावगति को नया मोड़ दिया अथवा उस प्रवृत्ति को उभारने की मानसिकता बनाई जो द्वंद्वगीत और रसवंती में दबी हुई थी। अब कवि बटोही, शायद 'स्वतंत्रता संग्राम' के बटोही से कह रहा है कि 'जलती बत्ती छुला न'। 'सामधेनी' में ही कलिंग विजय कविता है, जो कुरुक्षेत्र की रचना का संकेत देती है और कवि का भी आग्रह है कि कलिंग विजय को कुरुक्षेत्र के साथ मिला कर पढ़ें। कलिंग विजय में हिंसा के ऊपर अहिंसा को वरीयता या प्राथमिकता दी गई है मनुष्यता के हित में लेकिन कवि हिंसा और अहिंसा के द्वंद्व से मुक्त नहीं हो पाया और कुरुक्षेत्र में आकर कवि हिंसा का निषेध नहीं करने की स्थिति में आ जाता है। क्योंकि मनुष्य को न्याय चाहिए और उसके लिए हिंसा भी हो सकती है। 'सामधेनी' में एक कविता है – अंतिम मनुष्य। इस कविता में कवि कहता है –

सारी दुनिया उजड़ चुकी है गुजर चुका है मेला;

ऊपर है बीमार सूर्य नीचे मैं मनुज अकेला।

यह कैसी भावदशा है। इस दशा में दिनकर को देखने की जरूरत लोगों ने नहीं समझी जब कि कवि स्वयं कविता के स्थायी तत्व की खोज इस तरह से कर रहा है। एक कविता में कवि कहता है –

आदमी का स्वप्न ! है वह बुलबुला जल का

आज उठता और कल फिर फूट जाता है

किंतु फिर भी धन्य ठहरा आदमी ही तो !

बुलबुलों से खेलता कविता बनाता है।

इस कविता में अनोखी बात यह है कि इसके अनुसार कवि व्यक्ति के कष्ट के लिए व्यक्ति को ही जवाबदेह समझता है, यानी आदमी अपने कष्ट का जन्मदाता स्वयं है। 'आदमी भी क्या अनोखा जीव होता है। उलझने अपनी बना कर आप ही फँसता और फिर बेचैन हो जगता न सोता है।' ऐसी समझ मनुष्य को संघर्ष से दूर ले जाती है। लगता है कि कवि अपने उस दौर में संघर्ष का अंतिम मनुष्य खोज रहा था, खोज ही नहीं रहा था, अंतिम मनुष्य को स्थापित भी करना चाहता था।

दिनकर की भाव दशा या काव्य चेतना में आए मोड़ की एक विशेषता यह भी है कि वे छोटे या तात्कालिक प्रश्नों को छोड़ कर बड़े और दीर्घकालिक प्रश्नों से जूझने लगते हैं। 'कुरुक्षेत्र' इस क्रम की पहली रचना है, कुरुक्षेत्र प्रबंध कविता है, लेकिन उसमें प्रबंधात्मकता नहीं के बराबर है। दिनकर ने खुद कहा है कि 'कुरुक्षेत्र' में मैं शुरू से अंत तक सोचता ही रहा हूँ। इसमें मुझे जो कहना था, वह युधिष्ठिर भीष्म प्रसंग के बिना भी कहा जा सकता था। (भूमिका)। कुरुक्षेत्र की चिंता मनुष्यता और मानव समाज की चिंता है, और यही बात कविता का उदात्तीकरण करती है। स्वतंत्रता संग्राम कविता का अत्यंत महत्वपूर्ण विषय था, लेकिन वह तात्कालिक या अल्पकालिक विषय था। क्योंकि देश के आजाद होते ही बहुतेरे कवियों का विषय लुप्त हो गया। दिनकर का जागरूक और क्रियाशील कवि आजादी की धमक पाकर ही राष्ट्र से ऊपर उठ कर मानवता के भवितव्य के बारे में सोचने लगता है। कलिंग विजय से कुरुक्षेत्र तक यह चिंता सक्रिय है। कविता में दिया गया समाधान विचारणीय जरूर है, लेकिन वह अंतिम नहीं है। समाधान तो कविता से अधिक दिनकर की चेतना में है और वह इस प्रकार है – 'अहिंसा अगर परम धर्म है तो हिंसा को आपद्धर्म मानना ही पड़ेगा। और इस मान्यता से भी निस्तार नहीं है कि जिसका आपद्धर्म नष्ट हो गया उसका परम धर्म भी नहीं बचेगा।' (रश्मिलोक की भूमिका)। कुरुक्षेत्र में युधिष्ठिर और भीष्म महाभारत के पात्र नहीं हैं, बल्कि वे बीसवीं सदी के भारत में, पूरे स्वाधीनता संग्राम में, हुए वैचारिक संघर्ष के दो पक्षों के प्रतीक हैं। यह भी कहा जा सकता हैं कि बीसवीं सदी में पूरी दुनिया के स्तर पर ये प्रश्न उठे हुए थे, अतः स्वाभाविक रूप से कुरुक्षेत्र की काव्य चिंता मनुष्यता से जुड़ जाती है। ध्यान देने की बात है कि दिनकर स्वयं कहते हैं – 'कुरुक्षेत्र में महात्मा गांधी के विचारों का प्रतिनिधित्व युधिष्ठिर करते हैं, किंतु जो नवयुवक गांधी जी की अहिंसा को धर्म के रूप में स्वीकार करने को तैयार नहीं थे, उनके प्रतिनिधि प्रतीक भीष्म हैं।' (रश्मिलोक की भूमिका)। कैसी बात है कि महाभारत के पितामह बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध के भारत की नई पीढ़ी के प्रतीक हैं और महाभारत में प्रपौत्र पीढ़ी का युधिष्ठिर स्वाधीनता संग्राम के सबसे बुजुर्ग नेता महात्मा गांधी का प्रतीक है। वैसे कुरुक्षेत्र एक विचार काव्य है और विचार की उदात्तता और सशक्त अभिव्यक्ति ने एक श्रेष्ठ काव्य प्रस्तुत किया। इसने दिनकर की तात्कालिक कीर्ति को स्थायित्व प्रदान करने का आधार दिया। कुरुक्षेत्र इस बात का ज्वलंत उदाहरण है कि ऊँचे विचार के बिना ऊँची कविता नहीं रची जा सकती है

'कुरुक्षेत्र' के रचना काल में दिनकर बिहार सरकार के प्रचार विभाग और जनसंपर्क विभाग में पदस्थापित थे। इस दौर में कुरुक्षेत्र की रचना करने के साथ ही उन्होंने विश्व स्तर की कविताओं का अध्ययन किया। डी.एच. लारेंस,

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 6.551 | Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 10, Issue 4, July 2023 |

जेम्स ज्वायस, टी.एस. इलियट, रिल्के आदि अनेक कवियों का अध्ययन किया और उनसे प्रभाव ग्रहण किया। वे स्वयं कहते हैं – 'ज्यों ज्यों मैं संसार की नई कविताओं से परिचित होता गया मेरी अपनी कविताओं की अदाएँ बदलती गईं।'[3] (रश्मिलोक की भूमिका)। दिनकर सर्जनात्मक दृष्टि से तो एक संवेदनाशील कवि हैं ही कविता के इतिहास और स्वरूप के गंभीर अध्ययन की दृष्टि से भी अत्यंत जागरूक और विवेकशील कवि हैं, इसीलिए वे अपने कवित्व के लिए स्थायी या श्रेष्य काव्य प्रसंग खोजते रहे हैं। इसी क्रम में वे कविताएँ लिखी गईं, जो 'नीलकुसुम' में संकलित हैं। पर इस संग्रह की कविताओं में कोई उत्तेजना नहीं है, कहीं दुरत गति नहीं है। शांत चित्त को व्यक्त करने वाली भाषा है, जो मंथरगति से चलती है। जाहिर है कि भावों का प्रबल वेग थम गया है। 'नीलकुसुम' में भी हिमालय है, इस शीर्षक से एक कविता है, जिसकी कुछ पंक्तियाँ इस तरह हैं –

लिए अंतर व्यथा अथाह

हम भी तो दिन रात यही सोचा करते हैं मौन।

पृथ्वी पर अवतरित आलोक यह नया कौन।

परिस्थिति में जो फर्क पड़ा है, उसका असर कवि के मन पर है। आवेग शांत हो गया है। दूसरे विश्वयुद्ध की समाप्ति से जो विश्व शक्ति संतुलन में परिवर्तन हुआ है, उसे दिनकर जी इस पंक्ति से व्यक्त कर रहे हैं – 'पृथ्वी का अवतरित हुआ आलोक यह नया कौन?' स्वतंत्रता और जनतंत्र का नया दौर शुरू हो गया है।

अब इस दौर में विचारों से विचार, आदर्शों से आदर्श अपना अपना पक्ष लेकर टकरा रहे हैं। दिनकर का कवि इस दौर के चरित्र से इतना उत्साहित है कि वह कहता है –

लोहे के पेड़ हरे होंगे, तू गान प्रेम के गाता चल

नम होगी यह मिट्टी जरूर आँसू के कण बरसाता चल

कवि समझता है कि अभी भी दुनिया में दुख बहुत है, आकाश चीत्कारों से भरा है, धरती पर कंकालों और खप्परों का ढेर है –

आशा के स्वर का भार पवन को लेकिन लेना ही होगा

जीवित सपनों के लिए मार्ग मुर्दों को देना ही होगा।

दिनकर के कवि का एक नया व्यक्तित्व यहाँ दिखाई पड़ता है। 'हुंकार' में कवि निर्द्वंद्व भाव से कह रहा था –

कलम आज उनकी जय बोल !

जला अस्थियाँ बारी बारी

छिटकाई जिनने चिनगारी

जो चढ़ गए पुष्प वेदी पर लिए बिना गरदन का मोल[2]

और अब नीलकुसुम के समय में परिस्थिति बदल जाने पर कवि पूछता है –

किसको नमन करूँ

तुझको या तेरे नदीश, गिरि वन को नमन करूँ।

मेरे प्यारे देश ! देह या मन को नमन करूँ।

किसको नमन करू मैं भारत! किसको नमन करूँ।

देह या मन में फर्क समझने की दुविधा है कवि के मन में। मन यानी चिंतन अधिक महत्वपूर्ण है, अतः कवि का रुझान चिंतन की ओर है। एक बात पहले की तरह कवि की चेतना में अब भी है। उसे यह भरोसा तो हो गया है कि अब पीड़ितों को – जरूरतमंदों को – न्याय मिलेगा, लेकिन देगा कौन! जनता नई परिस्थिति में अपनी ताकत से न्याय ले लेगी, यह कवि के मन में नहीं है। 'जनतंत्र का जन्म' कविता में वे लिख चुके हैं कि 'सदियों की ठंडी बुझी राख सगबुगा उठी, मिट्टी सोने का ताज पहन इठलाती है' फिर भी 'नीलकुसुम' में कवि 'अर्धनारीश्वर' कविता में कहता है –

प्रत्याशा में निखिल विश्व है, ध्यान देवता ! त्यागो

बाँटो बाँटो अमृत हिमालय के महान, ऋषि जागो।

दिनकर जी की चेतना में 'मिथक' बैठे रहते है, बल्कि जमे रहते हैं वह और समकालीन जीवन प्रश्नों से जोड़ कर उनका प्रयोग कविता में करते रहते हैं। स्वतंत्रता संग्राम और द्वितीय विश्वयुद्ध समाप्त हो गए, तो कवि को लगता है कि देवासुर संग्राम समाप्त हो गया, समुद्र मंथन से स्वतंत्रता और जनतंत्र का अमृत मिल गया है, जिसे अब हिमालय के महान ऋषि यानी स्वयं शिव बाँटें। कवि उनका आह्वान करता है। इस चेतना की गहराई में झाँकें तो स्पष्ट होगा कि पूँजीवादी राजनीति जनता की कार्रवाई से परहेज करती है। यह परहेज दिनकर की कविता में भी है। वे जनता का नहीं पौराणिक नायकों का – मिथकों के देवता – का आह्वान करते हैं या फिर सदिच्छा और सद्भावना व्यक्त कर के रह जाते हैं। देखने की बात यह है कि पूँजीवादी विषमता और उस विषमता से उत्पन्न अन्याय दिनकर को अखरता है। इसे वे 'नींव का हाहाकार' कविता में व्यक्त भी करते हैं, लेकिन कवि प्रत्यक्ष ढंग से बात नहीं करता। वह कहता है –

काँपती है वज्र की दीवार

नींव में आ रही है है क्षीण हाहाकार

राष्ट्र का निर्माण हो रहा है, नया महल बन रहा है, नींव में जनता है, कवि नीव का हाहाकार सुनता है, और पूँजीवाद का लाभ उठाने वालों से पूछता है –

रोटियों पर कौर लेते ही कहीं से

अश्रु की बूँद क्या चूती कभी है।

इस अन्यायपूर्ण व्यवस्था का भोग करने वालों की संवेदनहीनता के प्रति कवि के मन में रोष है, तभी तो वह कहता है –

तोड़ दो इसको, महल को बर्बाद कर दो

नींव की ईंटें हटाओ

दब गए हैं जो अभी तक जी रहे हैं

जीवितों को इस महल के बोझ से आजाद कर दो।

इन पंक्तियों की भावना वरेण्य है, लेकिन ऐसा लगता है कि यह आह्वान अमूर्त शक्ति के प्रति है। कौन तोड़ेगा? नींव में दबे हुओं को आजाद कौन करेगा? यह कवि के मन में स्पष्ट नहीं है। इसीलिए कविता में आगे नियतिवाद आ जाता है –

वज्र की दीवार यह फट जाएगी

लपलपाती आग या सात्विक प्रलय का रूप धर कर

नींव की आवाज बाहर आएगी।

यह नियतिवाद कभी इतिहास में घटित नहीं हो सकता। उपर्युक्त कथन में 'सात्विक प्रलय' ध्यान देने योग्य है। यह सात्विकता ही इस प्रलय से जन को अलग कर देती है और अंततः संभ्रांत बना देती है। इस तरह की सात्विकता और संभ्रांतता पर अंग्रेजी के प्रसिद्ध लेखक बर्नार्ड शॉ ने व्यंग्य करते हुए कहा था – 'मैं अगली सुबह क्रांति चाहता हूँ लेकिन सज्जनतापूर्वक।'

दिनकर की काव्य चेतना के विकास और स्वरूप का जो विश्लेषण मैंने किया है उसे देखते हुए स्वातंत्रयोत्तर काल में उर्वशी की रचना कहीं से आश्चर्यजनक नहीं है। इस प्रसंग में 'रेणुका' की हाहाकार शीर्षक कविता मुझे याद आ रही है, जिसमें दूध का दूध कई बार आया है, जिससे स्पष्ट होता है कि गरीब परिवारों के मासूम बच्चों के लिए कवि बहुत परेशान है, लेकिन कविता में कवि कहता है –

मेरी भी चाह विलासिनि ! सुंदरता को शीश झुकाऊँ।

जिधर जिधर मधुमयी बसी हो उधर बसंतानिल बन जाऊँ!

दुनिया में मचे हाहाकार के बीच कवि की इस लालसा पर गौर करना चाहिए। कवि की लालसा यह है कि सुंदरता को शीश नवाए। दिनकर की सौंदर्य दृष्टि हर वस्तु में सौंदर्य नहीं खोज पाती। सुंदरता का प्रचलित अर्थ और रूप ही वे ग्रहण करते हैं। अतः हाहाकार थम जाने पर सुंदरता की देवी उर्वशी पर कविता का ध्यान चला ही जाता है। उर्वशी के दिनकर के सृजन क्षेत्र में आने पर मुझे 'रेणुका' की एक कविता की ये पंक्तियाँ याद आती हैं –

व्योम कुंजों की परी अभिकल्पने?

भूमि को निज स्वर्ग पर ललचा नहीं

पा न सकती मृत्ति उड़ कर स्वप्न को

युक्ति हो तो आ बसा अलका यहीं।

उर्वशी में मृत्ति का प्रतिनिधि पुरुरवा अपना कोई स्वप्न पाने के लिए नहीं, बल्कि स्वर्ग के देवों और देवराज इंद्र की सत्ता की रक्षा करने के लिए गया था और उसका पौरुष एवं वीरत्व देख कर स्वर्ग की अप्सरा उर्वशी उस पर आसक्त हो गई। उर्वशी का सार तत्व यह है। भूमि पुत्र पुरुरवा को स्वर्ग और स्वर्ग की देवी नहीं ललचा सकती है, उल्टे उर्वशी भूमि पुत्र पर समर्पित हो जाती है। दिनकर की काव्य चेतना का एक रूप यह भी है। मनुष्य के पुरुषार्थ का स्थान उसमें सबसे ऊपर है। पुरुरवा के प्रति उर्वशी की आसक्ति का एक बड़ा कारण देवताओं में भी है और यह कि देवताओं में कोई परिवर्तन नहीं होता, उनमें एकरसता है, इससे ऊब पैदा होती है। स्वर्ग और देवों से ऊबी हुई उर्वशी धरती के मनुष्य पुरुरवा की ओर आकृष्ट होती है। इसी पृष्ठभूमि में पुरुरवा कह सकता है –[1]

मर्त्य मानव की विजय का तूर्य हूँ मैं

उर्वशी अपने समय का सूर्य हूँ मैं।

दिनकर कहते है – 'मैंने किसी भी ध्येय को ध्यान में रख कर इस काव्य की रचना नहीं की है।' (रश्मिलोक की भूमिका)। स्वयं रचनाकार के ऐसा कहने के बावजूद कोई ध्येय या उद्देश्य या कोई संदेश रचना में आ ही जाता है, क्योंकि भाषा सार्थक शब्दों की व्यवस्था है, दूसरे रचना प्रसंग बिना किसी विशिष्ट अर्थ या संदेश के हो नहीं सकता। एक विशेष अर्थ मैंने ऊपर दिया है, लेकिन स्वयं कवि ने भी काम और प्रेम के संबंध का प्रश्न उठाया है। इस प्रसंग में दिनकर जी का यह कहना महत्वपूर्ण है – 'उर्वशी धर्म नहीं प्रेम की अतींद्रियता का आख्यान है और यही अतींद्रियता उसका आध्यात्मिक पक्ष है।' (रश्मिलोक की भूमिका)। उर्वशी और पुरुष के संपर्क या संबंध को लेकर तरह तरह के आलोचकों ने तरह तरह की स्थापनाएँ दी हैं, कामाध्यात्म की लंबी चौड़ी व्याख्याएँ दी हैं। ध्यान देने की बात यह है कि रूप यानी स्थूल सत्ता स्त्री की हो या पुरुष की, उसके बिना न प्रेम हो सकता है न काम। स्थूल में निहित आकर्षण का बोध ज्ञानेंद्रियों के बिना असंभव है। अब इंद्रियबोध से उत्पन्न काम (लालसा) या प्रेम आगे बढ़ कर अतींद्रिय होता है या नहीं, वह अध्यात्म का रूप लेता है या नहीं, यह तो निहायत वैयक्तिक अनुभूति की बात है। काव्य की रसानुभूति कुछ के लिए ही ब्रह्मानंद सहोदर हो सकता है, सबके लिए नहीं। आचार्य शुक्ल के लिए तो वह लोकदशा में लीन होना था। इसी तरह काम का आनंद कामासक्ति की तात्कालिकता का उल्लंघन करके आलंबन के प्रति स्थायित्व और गहनता ग्रहण करे तो उसे प्रेम कहा जा सकता है। यह स्थायित्व और गहनता या सघनता प्राप्त करना ही तो अतींद्रिय होना है। इसे कोई चाहे तो अध्यात्म कह सकता है। आत्म का तात्कालिक लालसा से ऊपर उठना ही प्रेम का रूप होगा। इससे अधिक कामाध्यात्म क्या होगा? यहाँ पूरी बहस को नहीं समेटा जा सकता है। उर्वशी का मनोवैज्ञानिक अध्ययन करना स्वाभाविक है, गलत नहीं। मैं यहाँ उधर नहीं जा रहा हूँ। नई कविता के दौर में उर्वशी का खास महत्व था क्योंकि इसने कविता में लघु मानव की विजय के स्थान पर यह बोध प्रस्तुत किया कि मर्त्य मानव की विजय का तूर्य स्वर्ग तक गूँजता है। इस दृष्टि से उर्वशी हिंदी कविता की महत्वपूर्ण उपलब्धि है।

'परशुराम की प्रतीक्षा' के बारे में कवि ने खुद एक मजेदार बात कही है। सन् 1962 में भारत चीन युद्ध हुआ और चीन की सेना ने भारत की सीमा का अतिक्रमण किया। स्वतंत्र भारतीय राष्ट्र फिर एक बार आहत हुआ। यही आहत भावना फिर एक बार दिनकर को उत्तेजित कर देती है। दिनकर ने खुद कहा है – 'हमारा सारा राष्ट्र एक विचित्र उन्माद से ग्रस्त है। मैं उस उन्माद को जुगाकर साहित्य में रख देना चाहता हूँ, जिससे इतिहास उसे याद कर सके।' (रश्मिलोक की भूमिका)। दिनकर जी ने उन्माद को जुगाने की कोशिश की है, इसीलिए 'परशुराम की प्रतीक्षा' में कवित्व नहीं है, कविता तो संवेदना या मनुष्यत्व को जुगा कर रखने का रचनात्मक प्रयत्न है। राष्ट्रीय

अहंकार और राष्ट्रीय उन्माद में मनुष्य आहत होता है, इसे कविता में नहीं एक कहानी 'वांगचू' में भीष्म साहनी ने कितनी खूबी से जुगा कर रख दिया है, यह आज भी पाठक देख सकते हैं और आगे भी देखेंगे।[3] दिनकर जैसे बड़े कवि 'परशुराम की प्रतीक्षा' में फिर उलट कर 1933 में लिखित 'हिमालय' के करीब चले गए हैं। इससे 'नीलकुसुम' की कविताओं की चेतना खंडित होती है। नीलकुसुम से 'कोयला और कवित्व' तक की काव्यात्मक भावना के बीच में 'परशुराम की प्रतीक्षा' संगीत का धैवत स्वर है, जो राग को भंग कर देता है। 'कोयला और कवित्व' में भी कवि सोचता है, अनेक प्रश्नों पर प्रतीकों और रूपकों के सहारे सोचता है। उपयोगिता और सौंदर्य का रिश्ता, प्रेम और सत्ता का संबंध, प्रकृति और मनुष्य का संबंध, स्वयं प्रकृति के अंतर्विरोध आदि प्रश्नों पर कवि सोचता रहता है। यहाँ कवि निर्द्वंद्व भाव से मनुष्यता, प्रेम, सौंदर्य आदि का पक्ष लेता है। उर्वशी का मनुष्य यहाँ और व्यापक भूमिका में दिखाई पड़ता है, भले ही किसी आख्यान में नहीं, फुटकल कविताओं में।

दिनकर की शक्ति और विशिष्टता यह है कि आधुनिक कविता में किसी एक प्रवृति और धारा के साथ न होकर भी वे आधुनिक कविता के विकास में अपनी सार्थकता और महता सिद्ध करते हैं। उत्तेजना और संवेदना का सामंजस्य अपनी रचनात्मक भाषा में करने का विलक्षण प्रयोग उन्होंने किया है। उनकी इस रचनात्मक सामर्थ्य को व्यापक स्वीकृति प्राप्त है। दिनकर किसी काव्य प्रवृत्ति के प्रवर्तक नहीं हैं, वे इतिहास चेतना के साथ मजबूती से चलते रहे हैं। बच्चन उनके समकालीन कवि हैं। एक समय में दोनों ही युवा पीढ़ी में अत्यंत लोकप्रिय रहे। बच्चन भी विकासमान काव्य चेतना के साथ कदम मिलाने की कोशिश करते हैं, लेकिन सफल नहीं हो पाते। दिनकर सफल इस अर्थ में हैं कि नई कविता और उसके बाद भी कोई उन्हें पिछड़ा हुआ या पीछे पड़ा हुआ कवि नहीं कहता। प्रवृत्ति विधायक कवि नहीं होने के कारण दिनकर किसी दौर में नए आते हुए रचनाकारों को प्रभावित नहीं कर सके, फिर भी स्वातंत्रयोत्तर काल के कवियों और पाठकों से भी उन्हें अत्यधिक आदर मिला।[4,6]

प्रतिक्रिया दें संदर्भ

1. दिनकर एक शताब्दी, डॉ स्वयंवती शर्मा, डॉ, दिनेश कुमार.
2. राष्ट्रकवि दिनकर एवं उनकी काव्य कला, शिखर चन्द्र जैन
3. दिनकर का वीरकाव्य, धर्मपाल सिंह आर्य
4. दिनकर व्यक्तित्व और रचना के नये आयाम, डॉ गोपाल राय सत्यकाम
5. दिनकर की काव्यभाषा, डॉ यतीन्द्र तिवारी
6. हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ. नागेन्द्र

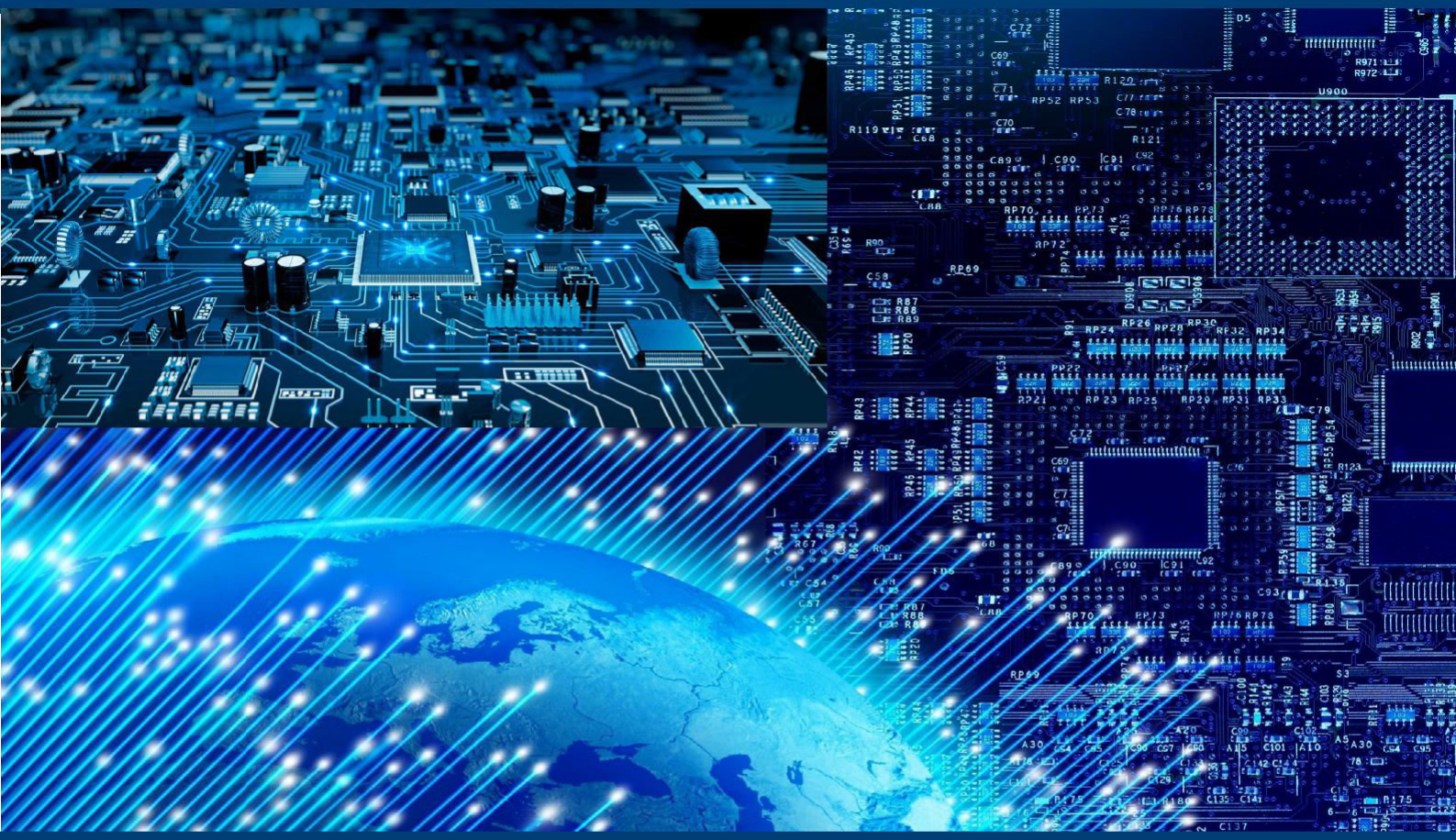

International Journal of Advanced Research in Arts, Science, Engineering & Management (IJARASEM)

| Mobile No: +91-9940572462 | Whatsapp: +91-9940572462 | ijarasem@gmail.com |